International Journal in Management and Social Science
Volume 11 Issue 05,May 2023 ISSN: 2321-1784 Impact Factor: 8.088
Journal Homepage: http://ijmr.net.in, Email: irjmss@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal

भारतीय चिंतन परंपरा में सामाजिक न्याय : मध्यकालीन भक्ति आंदोलन के संदर्भ में

देशराज यादव, सह आचार्य,ला. ब.शा. राजकीय महाविद्यालय, कोटपूतली।

सार:
सामाजिक न्याय की अवधारणा भारतीय चिंतन परंपरा में प्राचीन काल से विकसित होती रही है, किंतु मध्यकालीन भक्ति आंदोलन ने इसे व्यापक जनआंदोलन का स्वरूप प्रदान किया। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य भक्ति आंदोलन के प्रमुख संतों के विचारों के माध्यम से सामाजिक समानता, जातिगत भेदभाव के विरोध तथा धार्मिक लोकतंत्रीकरण का विश्लेषण करना है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि भक्ति आंदोलन ने सामाजिक न्याय के विचारों को जनसामान्य तक पहुँचाने का महत्वपूर्ण कार्य किया, यद्यपि यह संरचनात्मक परिवर्तन लाने में पूर्णतः सफल नहीं हो सका, परंतु सामाजिक चेतना के जागृत करने में इसका महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

मुख्य शब्द: सामाजिक न्याय, भक्ति आंदोलन, समानता, जाति व्यवस्था, भारतीय दर्शन

प्रस्तावना

भारतीय समाज में सामाजिक न्याय की अवधारणा का मूल आधार **"सर्वे भवन्तु सुखिनः"** तथा "**वसुधैव कुटुम्बकम्**" जैसे दार्शनिक सिद्धांतों में निहित है। यद्यपि, समय के साथ जाति-व्यवस्था और सामाजिक असमानताओं ने समाज को विभाजित किया। मध्यकाल तक आते-आते भारतीय समाज में ऊंच नीच पर आधारित जाति व्यवस्था, महिलाओं के साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार, धार्मिक आडंबर, सामाजिक बुराइयों का ताना-बाना समाज को जकड़ चुका था। मध्यकालीन भक्ति आंदोलन असमानताओं के विरुद्ध एक सशक्त वैचारिक और सामाजिक प्रतिक्रिया के रूप में उभरा। इस आंदोलन ने धार्मिक आडंबरों, जातिगत भेदभाव तथा सामाजिक ऊँच-नीच को चुनौती दी और मानव-समता का संदेश दिया।

अध्ययन के उद्देश्य:

- भारतीय चिंतन परंपरा में सामाजिक न्याय की अवधारणा का विश्लेषण करना।
- भक्ति आंदोलन के प्रमुख संतों के विचारों का अध्ययन करना।
- सामाजिक समानता के संदर्भ में भक्ति आंदोलन के योगदान का मूल्यांकन करना।
- भक्ति आंदोलन की सीमाओं का आलोचनात्मक परीक्षण करना।

अनुसंधान पद्धति:

यह शोध पत्र गुणात्मक पद्धति पर आधारित है। इसमें द्वितीयक स्रोतों—जैसे ऐतिहासिक ग्रंथ, संत साहित्य, शोध पत्र एवं प्रामाणिक पुस्तकों—का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन में व्याख्यात्मक एवं तुलनात्मक दृष्टिकोण अपनाया गया है।

भारतीय चिंतन परंपरा में सामाजिक न्याय:

भारतीय दर्शन में सामाजिक न्याय का विचार उपनिषदों, बौद्ध एवं जैन दर्शन में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। भगवान बुद्ध ने वर्ण-व्यवस्था का विरोध करते हुए कर्म और आचरण की श्रेष्ठता का विचार

दिया। उन्होंने करुणा, अहिंसा और मध्यम मार्ग के माध्यम से समानता और सामाजिक समरसता का संदेश दिया। महावीर ने अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकांतवाद के सिद्धांतों के माध्यम से सभी जीवों के प्रति समान दृष्टि और न्यायपूर्ण व्यवहार की शिक्षा दी। धर्मशास्त्रों और स्मृतियों में सामाजिक न्याय का स्वरूप अधिक व्यवस्थित रूप में मिलता है, जहाँ समाज को विभिन्न वर्णों और आश्रमों में विभाजित कर कर्तव्यों का निर्धारण किया गया। यद्यपि इस व्यवस्था का उद्देश्य सामाजिक संतुलन बनाए रखना था, परंतु समय के साथ यह कठोर और जन्म-आधारित हो गई, जिससे सामाजिक असमानताएँ उत्पन्न हुईं। इस प्रकार, जहाँ एक ओर प्राचीन भारतीय चिंतन ने सामाजिक न्याय के उच्च आदर्श प्रस्तुत किए, वहीं व्यवहार में इन आदर्शों का पूर्णतः पालन नहीं हो सका जिसके परिणाम स्वरूप मध्यकालीन समाज में जातिगत असमानताएँ गहराई से स्थापित हो गई, जिन्हें चुनौती देने का कार्य भक्ति आंदोलन ने किया।

मध्यकालीन भक्ति आंदोलन : स्वरूप एवं विशेषताएँ

भक्ति आंदोलन की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित थीं—

- ईश्वर के प्रति व्यक्तिगत और सरल भक्ति
- कर्मकांड और पुरोहितवाद का विरोध
- जनभाषाओं (अवधी, ब्रज, पंजाबी, मराठी आदि) का प्रयोग
- सामाजिक समानता और भाईचारे पर बल

भक्ति आंदोलन और सामाजिक न्याय : 13वीं से 15वीं शताब्दी के मध्य भारतीय समाज में महत्वपूर्ण राजनीतिक और आर्थिक परिवर्तन हुए। इस काल में सामाजिक संरचना में व्यापक हलचल देखने को मिली, जिसके परिणामस्वरूप समाज के मध्यम एवं निम्न वर्गों के लोग धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्तर पर सक्रिय हुए। इसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में भक्ति आंदोलन का उदय हुआ, जिसने भारतीय समाज और संस्कृति की रक्षा एवं पुनर्संरचना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 13वीं से 15वीं शताब्दी का यह काल, जिसे सामान्यतः 'भक्तिकाल' कहा जाता है, अनेक संतों और समाज सुधारकों के प्रादुर्भाव का साक्षी रहा।

उत्तर भारत में कबीर, गुरु नानक देव तथा दादू दयाल जैसे संतों ने सामाजिक समानता, धार्मिक सहिष्णुता और आडंबर-विरोधी विचारों का प्रसार किया। दक्षिण भारत में रामानुजाचार्य तथा उत्तर भारत में रामानंद जैसे आचार्यों का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा, जो ब्राह्मण परंपरा से संबंधित थे, किंतु उनके विचारों में व्यापक लोक समावेशिता दिखाई देती है। इसी प्रकार वल्लभाचार्य, माध्वाचार्य तथा तुलसीदास भी ब्राह्मण वर्ण से संबंधित होते हुए भक्ति परंपरा के प्रमुख स्तंभ बने। इन संतों ने क्षेत्रीय समाज में भक्ति आंदोलन को जन-आंदोलन का स्वरूप प्रदान किया और सामाजिक समरसता को सुदृढ़ किया। स्थानीय भाषा के माध्यम से उन्होंने अपने विचारों का व्यापक प्रसार किया, जिससे समाज के निम्न वर्गों की भागीदारी सुनिश्चित हुई। इस प्रकार भक्ति आंदोलन ने न केवल धार्मिक चेतना का प्रसार किया, बल्कि भाषा, समाज और संस्कृति के स्तर पर भी व्यापक परिवर्तन उत्पन्न किए।

संतों के विचार और सामाजिक समानता:

कबीर: कबीर भक्ति आंदोलन के प्रमुख संत तथा महान समाज सुधारक थे। कबीर ने जाति-व्यवस्था और धार्मिक पाखंड का तीव्र विरोध किया। उन्होंने समाज में प्रचलित व्याप्त सामाजिक कुरीतियों का डटकर

विरोध किया। तत्कालीन समाज में प्रचलित अंधविश्वास, रूढ़िवादिता तथा दकियानूसी विचारों का डटकर मुकाबला किया। उनका प्रसिद्ध दोहा—

"जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान॥"[1]

इस बात को स्पष्ट करता है कि व्यक्ति का मूल्य उसके ज्ञान और गुणों से होना चाहिए, न कि उसकी जाति से।

कबीर ने समाज के आर्थिक ढाँचे पर भी गहरा और स्पष्ट प्रहार किया। उन्होंने बहुत पहले यह बात समझ ली थी कि समाज और राष्ट्र में अधिकांश संघर्ष और विवाद आर्थिक असमानता के कारण उत्पन्न होते हैं। उस समय के राजनीतिक परिवर्तन और सामाजिक अत्याचारों के कारण शिल्पकारों, मजदूरों, किसानों तथा निम्न वर्गों की आर्थिक स्थिति अत्यंत दयनीय हो गई थी। समाज की अधिकांश संपत्ति जमींदारों और अमीर वर्ग के पास केंद्रित थी, जबकि बड़ी जनसंख्या गरीबी और अभाव में जीवन व्यतीत कर रही थी।[2]

कबीर ने केवल धार्मिक अंधविश्वास, कट्टरता और कर्मकांड का ही विरोध नहीं किया, बल्कि उन्होंने ऊँच-नीच, जात-पाँत और छुआछूत जैसी सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध भी खुलकर आवाज उठाई। उनका उद्देश्य एक ऐसे समाज की स्थापना करना था जहाँ सभी मनुष्य समान हों और किसी प्रकार का भेदभाव न हो।[3] सामाजिक न्याय की पुनर्स्थापना के लिए कबीर ने जीवन के हर क्षेत्र में अपने विचारों का प्रभाव डाला। उनके विचार सरल, स्पष्ट और गहरे थे, जिन्होंने आगे आने वाले विचारकों को भी प्रभावित किया। उन्होंने समाज को नई दिशा दी और अपने समय के धर्म तथा सामाजिक व्यवस्था पर गहरा प्रभाव डाला। इस प्रकार कबीर केवल एक महान निर्गुण भक्त ही नहीं थे, बल्कि वे एक सच्चे समाज सुधारक, उपदेशक और प्रगतिशील चिंतक भी थे।

गुरु नानक:

गुरु नानक देव मध्यकालीन भारतीय समाज को गहराई से प्रभावित करने वाले प्रमुख संतों में से एक थे। उन्होंने मानव जीवन के दुःखों को निकट से अनुभव किया और समाज में फैली गलत मान्यताओं तथा रूढ़ियों के विरुद्ध जागरूकता उत्पन्न की। वे भेदभाव से ऊपर उठकर हिन्दू और मुसलमान दोनों को समान दृष्टि से देखते थे।[5]

गुरु नानक ने मध्यकालीन समाज की विषम परिस्थितियों का दृढ़ता से विरोध किया। उन्होंने एकेश्वरवाद, सच्ची भक्ति और मानव एकता को अपने विचारों का आधार बनाया। मूर्ति-पूजा के स्थान पर उन्होंने आंतरिक भक्ति और सच्चे आचरण पर बल दिया। उनके अनुसार ईश्वर एक है और उसकी भक्ति सभी के लिए समान रूप से सुलभ है। उन्होंने मनुष्य के भीतर निहित शक्ति को जागृत करने का प्रयास किया और ईश्वर में विश्वास के माध्यम से जीवन को सार्थक बनाने की प्रेरणा दी।

कबीर की भाँति गुरु नानक ने भी जाति-प्रथा और सामाजिक भेदभाव के विभिन्न रूपों का विरोध किया। उन्होंने समाज में व्याप्त विसंगतियों को उजागर किया और समानता तथा मानव गरिमा को स्थापित करने पर बल दिया।[6]

उनके विचारों में भारतीय धार्मिक परंपरा के साथ-साथ इस्लाम के श्रेष्ठ सिद्धांतों का भी समन्वय दिखाई देता है, जिसे उन्होंने सहज रूप से अपनाया।

गुरु नानक ने धर्म को एक व्यापक और व्यावहारिक आधार प्रदान किया, जो आगे चलकर समाज में एक नई चेतना का कारण बना। उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों को गुरु गोविन्द सिंह ने और अधिक संगठित रूप दिया, जिससे समाज में राष्ट्रीयता और एकता की भावना सुदृढ़ हुई। नानक के विचारों ने समाज में समानता, बंधुत्व, ईमानदारी और श्रम के महत्व को स्थापित किया। उन्होंने "किरत करो, नाम जपो, वंड छको" जैसे सिद्धांतों के माध्यम से यह संदेश दिया कि ईमानदारी से कार्य करना, ईश्वर का स्मरण करना और दूसरों के साथ बाँटकर जीना ही आदर्श जीवन है।

गुरु नानक धार्मिक अंधविश्वास और कर्मकांड के विरोधी थे। उन्होंने ऊँच-नीच, जात-पाँत और संप्रदायवाद जैसी सामाजिक बुराइयों की आलोचना की और एक ऐसे समाज की कल्पना की, जहाँ सभी मनुष्य समान अधिकार और सम्मान के साथ जीवन जी सकें।

गुरु नानक देव ने "एक ओंकार सतनाम" के माध्यम से समस्त मानवता की एकता का संदेश दिया। उन्होंने लंगर परंपरा प्रारंभ की, जहाँ सभी लोग एक साथ बैठकर भोजन करते हैं। यह सामाजिक समानता का व्यावहारिक उदाहरण है।

रैदास

रैदास ने "बेगमपुरा" की कल्पना प्रस्तुत की—

"ऐसा चाहूँ राज मैं, जहाँ मिले सबन को अन्न।
छोट-बड़ा सब सम बसें, रैदास रहे प्रसन्न॥"

यह एक ऐसे समाज की परिकल्पना है जहाँ कोई भेदभाव न हो और सभी को समान अधिकार प्राप्त हों।

मीरा बाई

मीरा बाई ने सामाजिक बंधनों और पितृसत्तात्मक व्यवस्था को चुनौती देते हुए कहा—

"मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।"

यह कथन व्यक्तिगत स्वतंत्रता और आत्म-अभिव्यक्ति का प्रतीक है, जो सामाजिक न्याय के व्यापक अर्थ को दर्शाता है।

तुलसीदास:

तुलसीदास मध्यकालीन भारत के महान भक्त कवि होने के साथ-साथ एक प्रभावशाली समाज सुधारक भी थे। उन्होंने अपनी रचनाओं, विशेष रूप से रामचरितमानस, के माध्यम से समाज में व्याप्त धार्मिक और नैतिक विकृतियों को उजागर किया और लोगों को सही आचरण की ओर प्रेरित किया।

तुलसीदास ने समाज में समन्वय की भावना को बढ़ावा दिया। उन्होंने ब्राह्मण और शूद्र सहित सभी वर्गों के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया। उनकी रचनाओं में गुरु-भक्ति, नारी के प्रति सम्मान, भक्तों के प्रति प्रेम, शासकों के कर्तव्य तथा सामाजिक और नैतिक मूल्यों पर विशेष बल दिया गया है।

उन्होंने कोई नया धर्म या संप्रदाय स्थापित नहीं किया, बल्कि प्रचलित भक्ति परंपराओं के भीतर ही समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। उनका विश्वास था कि यदि व्यक्ति का आचरण शुद्ध और नैतिक हो जाए तो समाज की अधिकांश बुराइयाँ स्वतः समाप्त हो सकती हैं।

तुलसीदास जाति-पाँत के कठोर भेदभाव के समर्थक नहीं थे बल्कि वे सामाजिक समरसता के पक्षधर थे। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि मनुष्य का मूल्य उसके आचरण और गुणों से होना चाहिए। इस प्रकार उनका योगदान धार्मिक ही नहीं बल्कि सामाजिक सुधार की दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण रहा।

रामानन्द

रामानंद मध्यकालीन भक्ति आंदोलन के प्रमुख संतों में से एक थे, जिन्होंने धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में समानता का सशक्त संदेश दिया। उन्होंने छुआछूत और जाति-पाँत जैसी कुरीतियों का विरोध करते हुए यह प्रतिपादित किया कि सभी मनुष्य ईश्वर की संतान हैं और इसलिए समान हैं।

रामानन्द ने एकेश्वरवाद पर बल दिया और हिन्दू-मुस्लिम एकता की भावना को प्रोत्साहित किया। उनके अनुसार सच्ची भक्ति ही मनुष्य को ईश्वर के निकट ले जाती है, न कि जाति या जन्म। उनके शिष्यों में विभिन्न जातियों के लोग शामिल थे। यहाँ तक कि निम्न वर्ग और तथाकथित 'अछूत' भी उनके प्रमुख अनुयायी बने। उन्होंने मठों और धार्मिक स्थलों में सभी वर्गों के लोगों के प्रवेश का समर्थन किया जो उस समय एक क्रांतिकारी कदम था।

रामानन्द का एक अन्य महत्वपूर्ण योगदान यह था कि उन्होंने महिलाओं को भी धार्मिक विचार-विमर्श और भक्ति कार्यों में भाग लेने का अधिकार दिया। इस प्रकार उन्होंने समाज में व्याप्त लैंगिक भेदभाव को चुनौती दी। उनके विचार मानववाद पर आधारित थे जिसमें सभी को समान सम्मान और अवसर प्रदान करने पर जोर दिया गया। उन्होंने समाज के विभिन्न वर्गों को एकता के सूत्र में पिरोने का प्रयास किया और समानता तथा बंधुत्व पर आधारित नई सामाजिक चेतना का विकास किया।[4]

धार्मिक लोकतंत्रीकरण

भक्ति आंदोलन ने यह स्थापित किया कि ईश्वर तक पहुँचने के लिए किसी पुरोहित या मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं है। इससे निम्न वर्गों और वंचित समुदायों को धार्मिक अधिकार प्राप्त हुए और सामाजिक न्याय की भावना सुदृढ़ हुई।

जनभाषाओं की भूमिका

भक्ति संतों ने संस्कृत के स्थान पर स्थानीय भाषाओं में अपने विचार व्यक्त किए, जिससे समाज के सभी वर्गों तक उनके संदेश पहुँचे। यह सांस्कृतिक लोकतंत्रीकरण का महत्वपूर्ण माध्यम बना।

भक्ति आंदोलन की सीमाएँ

यद्यपि भक्ति आंदोलन ने सामाजिक समानता का संदेश दिया, परंतु यह जाति-व्यवस्था को पूरी तरह समाप्त नहीं कर सका। समाज में संरचनात्मक परिवर्तन सीमित रहे और असमानताएँ बनी रहीं।

निष्कर्ष :

मध्यकालीन भक्ति आंदोलन भारतीय चिंतन परंपरा में सामाजिक न्याय की अवधारणा को जन-आधारित स्वरूप प्रदान करने वाला एक महत्वपूर्ण चरण था। इसने समानता, स्वतंत्रता और मानव गरिमा के मूल्यों

को सुदृढ़ किया तथा आधुनिक सामाजिक सुधार आंदोलनों और भारतीय संविधान के आदर्शों के लिए वैचारिक आधार तैयार किया।

संदर्भ सूची

1. दास, श. (1928). कबीर ग्रंथावली. नागरी प्रचारिणी सभा
2. **वर्मा, हरिश्चंद्र, मध्यकालीन भारत** पृ. **संख्या 438 – 440**
3. **सिंह , डॉ. रामगोपाल सामाजिक न्याय एवं दलित संघर्ष. पृष्ठ 53-54**
4. **शर्मा, डॉ. कालूराम, मध्यकालीन भारत का इतिहास पृष्ठ 495 से 496**
5. **वर्मा, हरिश्चंद्र पूर्वोक्त:** पृ. **संख्या 438 – 440**
6. **सिंह, डॉ. रामगोपाल, सामाजिक न्याय एवं दलित संघर्ष पृ.55**
7. वर्मा, हरिशंकर, मध्यकालीन भारत का इतिहास पृ.441
8. शर्मा, रामशरण (2018). प्राचीन भारत का इतिहास. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
9. हबीब, इरफान (2015). भारतीय समाज और अर्थव्यवस्था. तुलिका प्रकाशन।
10. ओमवेद्त, गेल (2008). बेगमपुरा की खोज. नवयान प्रकाशन।
11. कबीर — बीजक
12. रैदास — पदावली
13. सिख धर्म ग्रंथ — गुरु ग्रंथ साहिब

देशराज यादव, सह आचार्य,
ला. ब. शा. राजकीय महाविद्यालय कोटपूतली।